राजस्थान में भागवत धर्म

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्राक्कथन

भारतीय समाज की धार्मिक प्रवृत्ति की आधारभूत प्रकृति लौकिक है, शास्त्रीयता उसके स्वभाव में नही है, शास्त्र का स्रोत लोक है अतः शास्त्र लोक का अनुसरण करता है इसीलिए भारतीय धार्मिक प्रवृत्ति को सनातन धर्म कहा जाता है क्योंकि न उसके प्रवर्तन का कोई प्रस्थान बिन्दु है, न कोई उसका प्रवर्तक है और न ही उसका कोई एक शास्त्र है। तात्पर्य यह है कि सनातन धर्म (जिसे व्यवहार में हिन्दू धर्म कहा जाता है) में बहुत सी धार्मिक प्रवृत्तियाँ हैं। इन प्रवृत्तियों को हम तीन परंपराओं में वर्गीकृत कर सकते हैं। सर्वप्रथम लोक परंपरा, दूसरी वैदिक परंपरा और तीसरी श्रमण अथवा संन्यास परंपरा। सर्वप्राचीन लोक परंपरा में सर्वप्रथम हमें मातृ उपासना के साक्ष्य मिलते हैं, फिर उसमें शिव, यक्ष, गणेश इत्यादि विभिन्न देवताओं के प्रति आस्थाएँ मिलती हैं। इस परंपरा में उपासना की पद्धति पूजा (पुष्पज कर्म अर्थात आराध्य को केवल पत्र-पुष्प अर्पित करना) है।

वैदिक परंपरा में विभिन्न प्राकृतिक देवताओं की प्रार्थनाएं अथवा स्तुतियाँ हैं और फिर यज्ञपरक कर्म काण्ड की प्रमुखता है। श्रमण परंपरा में तप, त्याग और संयम का महत्व है। इसी परंपरा में जैन और बौद्ध धर्मो का उत्कर्ष हुआ। वैदिक आर्यों की ऋषि परंपरा धीरे-धीरे समाप्त हो गई और उसके उत्तराधिकारी ब्राह्मण कहे जाने लगे। ब्रह्म अर्थात् मंत्र का केवल उच्चारण करने वाले ब्राह्मण कहे जाते थे जिनका मंत्र (ब्रह्म) के अर्थ से उतना सरोकार नहीं था, परिणामस्वरूप वैदिक मंत्रों के अर्थ का लोप होने लगा। दूसरों के लिए यज्ञीय कर्मकाण्ड करने को आजीविका के रूप में अपनाकर इन्होंने यह प्रचारित किया कि मंत्र हमारे अधीन हैं तथा देवता मंत्र के अधीन; अतः हम भूदेव हैं और किसी भी देवता से किसी का भी हित-अहित करवाने में समर्थ हैं। इससे वे सामाजिक व्यवस्था, धार्मिकता और लोगों की दिनचर्या के निर्धारक हो गये तथा लोक ही नहीं परलोक के सम्बन्ध में भी वे व्यवस्थाएं देने लगे। यज्ञ में दी जाने वाली पशुबली का विरोध हुआ तो उन्होंने व्यवस्था दी कि यज्ञीय (वैदिक) हिंसा, हिंसा नहीं है। लोक-

परलोक, भूत-भविष्य के सम्बन्ध में अपनी सर्वज्ञता के प्रचार और यज्ञीय कर्मकाण्ड के विधान वैविध्य के द्वारा उन्होंने समाज पर जबरदस्त वर्चस्व स्थापित कर लिया। इस तरह वैदिक परम्परा अब ब्राह्मणों द्वारा संचालित होने से इसे ब्राह्मण-धर्म कहा जाने लगा। कलांतर में इसके विरुद्ध लोक में अर्थात आर्येतर जनों में प्रतिक्रिया हुई जिससे शैव, शाक्त इत्यादि धर्मों का उत्कर्ष हुआ। फिर क्षत्रियों में प्रतिक्रिया हुई, परिणामस्वरूप क्षत्रिय प्रधान जैन, बौद्ध, भागवत धर्मों का उत्कर्ष हुआ। इस उत्कर्ष से ब्राह्मणों की यज्ञपरक आजीविका समाप्त होने लगी तो उन्होंने शैव, शाक्त, भागवत इत्यादि धर्मों को अपना लिया।

डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राजपूज कालीन संस्कृति (राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2005) में लिखते हैं, 'प्राचीन भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से वैदिक धर्म प्रचलित था। ईश्वर की उपासना, यज्ञ करना तथा वर्ण व्यवस्था आदि इसके मुख्य अंग थे। यज्ञ में पशु-हिंसा भी होती थी। ईश्वर की उपासना उसके भिन्न-भिन्न नामों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में होती थी। प्रायः सारे भारतवर्ष में वैदिक धर्म का प्रचार था। बौद्धधर्म की उन्नति के समय में उसे राज्य की सहायता मिलने के कारण हिन्दू धर्म का प्रचार शनैःशनैः कम होता गया, और जैनधर्म ने भी इसे कुछ हानि पहुंचाई। बौद्ध और जैनधर्मों की उन्नति के समय में भी वैदिक धर्म या हिन्दूधर्म क्षीण तो हुआ, परंतु नष्ट नहीं हुआ। ज्योंही बौद्ध धर्म का प्रभाव कम होने लगा त्योंही हिन्दू धर्म ने बहुत वेग से उन्नति आरंभ की और वह बहुत विकसित तथा पल्लवित होने लगा'।

हिन्दू अथवा सनातन धर्म के पल्लवन तथा ब्राह्मणों के लोकव्यापी प्रभाव का कारण था, धार्मिक कर्मकाण्ड का ब्राह्मणों की आजीविका होना। इसी से वे विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों का समन्वय करते रहते थे, तथापि किसी न किसी रूप में वेदों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को बनाये रखते थे। समन्वय का प्रथम दर्शन शिवोपासना में होता है। ब्राह्मणों ने लोक देवता शिव अथवा शंकर को वैदिक देवता रुद्र से संस्तुत कर उसे महादेव की उपाधि प्रदान की और फिर उसके

साथ मातृ अथवा देवी, गणेश, कार्तिकेय, गंगा, चंद्रमा, अग्नि, ऋषभ, नाग (सर्प), प्रेतादि उपासनाओं एवं योग (संन्यास), भोग, पूजा इत्यादि का समन्वय कर दिया। यह अपने आप में एक विराट समन्वय था जिसने भारतीय धार्मिकता की मुख्य प्रवृत्ति को निर्धारित किया। तत्पश्चात् समन्वय का दूसरा दौर तब चला जब लोक में प्रचलित वीर पूरुषों की पूजा को ब्राह्मणों द्वारा अपनाये जाने की अनिवार्यता उपस्थित हुई। अब ब्राह्मणों ने अवतारवाद का आविष्कार किया। इसमें उन्होंने मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, परशुराम, राम, कृष्ण और फिर यहां तक कि अपने घोर विरोधी बुद्ध को द्वितीय श्रेणी के वैदिक देवता विष्णु से संस्तुत कर इन सब को विष्णु का अवतार घोषित कर दिया। इस तरह वैष्णव धर्म अस्तित्व में आया, जो कि सनातन धर्म की आधुनिक प्रवृत्ति है। परंतु यह वैष्णव धर्म मूलतः भावगत धर्म है और वैष्णव धर्म, भागवत धर्म का ब्राह्मणीय संस्करण है। भागवत धर्म मूलतः भक्तिधर्म तथा कृष्णोपासना है। इसमें भगवत अथवा भगवान के प्रति गहन आस्था, भक्ति, संन्यास, यज्ञ, व्रत, तीर्थयात्रा, दान, ज्ञानयोग, कर्मयोग (वैदिक मीमांसा अथवा कर्मकाण्ड), बौद्धों के शून्यवाद के समानांतर आचार्य शंकर द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवाद, बाद के आचार्यों द्वारा प्रवर्तित द्वैतवाद, आत्मवाद इत्यादि का अद्भुत समन्वय हुआ।

भागवत धर्म के आराध्य वासुदेव, नारायण और अंततः कृष्ण हैं। वासुदेव की उपासना अत्यंत प्राचीन विदित होती है और इन वासुदेव की विशिष्टता उनके चार भुजाएं होने में प्रकट होती है। प्रसिद्ध जैन ग्रंथ त्रिषष्ठीशलाकापुरुष में विभिन्न युगों में 'वासुदेव' तथा 'प्रतिवासुदेव' होने का उल्लेख है और द्वापर युग में कृष्ण को वासुदेव तथा कंस को प्रतिवासुदेव कहा गया है। हरिवंश पुराण से विदित होता है कि श्रीकृष्ण, वसुदेव के पुत्र होने से ही वासुदेव नहीं अपितु लोकपूज्य चतुर्भुज वासुदेव के रूप में प्रसिद्ध थे। हरिवंश पुराण (भविष्य पर्व अध्याय-91) के अनुसार राजा पौण्ड्रक कृष्ण को वासुदेव न मानकर स्वयं को राजाओं की सभाओं में, शङ्ख चक्र आदि से युक्तकर चतुर्भुज वासुदेव घोषित करता है।

दसवीं शताब्दी तक उसके मंदिरों या मूर्तियों के होने का कहीं पता नहीं लगता और कृष्ण के समान राम की भक्ति प्राचीन काल में रही हो, ऐसा नहीं पाया जाता। पीछे से राम की भी पूजा होने लगी, रामनवमी आदि त्यौहार मनाए जाने लगे'।

वस्तुतः जैन और बौद्ध धर्मों की तरह भागवत धर्म भी वैदिक यज्ञ परम्परा एवं ब्राह्मणों के धार्मिक वर्चस्व के विरोध का ही परिणाम था। यहां हमारा ध्यान उस प्रसंग की ओर जाता है जिसमें कृष्ण इन्द्रमख (पूजा) का निषेध कर गोवर्धन पर्वत की पूजा करवाते हैं। इस नवीन धर्म में ब्राह्मणों के वैदिक देवताओं की तो बात ही क्या शिव और ब्रह्मा जैसे पुराण प्रसिद्ध देवताओं को भी कृष्ण के ईश्वरत्व को मानने हेतु मजबूर किया जाता है। इस तरह भागवत धर्म मूलतः क्षत्रियों का अथवा उनके द्वारा पोषित धर्म विदित होता है। जैसा कि श्रीमद्भगवत्गीता में भी भगवान के द्वारा सूर्य को और फिर राजर्षियों को इस धर्म का उपदेश करना कहा गया है।

भगवान श्रीकृष्ण की लीलास्थली मथुरा मंडल में भागवत धर्म का उदय हुआ जिसमें देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण पूज्य हुए। श्रीकृष्ण यादवों की सात्वत शाखा में उत्पन्न हुए थे। विष्णु पुराण के अनुसार सात्वत वंश का प्रवर्तन यदु कुल में उत्पन्न अंश के पुत्र सात्वत ने किया। भागवत धर्म का प्रारम्भ इन्हीं यादवों के सात्वत वंश से हुआ। परन्तु लगता यह है कि वासुदेव कृष्ण की लोकदेवतापरक उपासना को सर्वप्रथम ब्रज के गोप ग्वालों ने अंगीकार किया और फिर सात्वत शासकों के प्रश्रय से यह मथुरामंडल अथवा शूरसेन जनपद में प्रसारित हुआ।

सुप्रसिद्ध विद्वान श्री चिन्तामणि राव वैद्य लिखते हैं-मनु की पुत्री इला और चन्द्र से उत्पन्न क्षत्रिय चन्द्रवंशी कहलाते हैं। चन्द्रवंशी क्षत्रिय सिन्धु नदी के उस पार राज्य करते थे, ऐसा ज्ञात होता है। क्योंकि असुरलोगों के राजा वृषपर्वा (जो ईरान के राजा थे, यह ठीक-ठीक स्वीकार किया जाता है।) का राज्य ययाति के राज्य के समीप था, यह बात इस कथा में कही गयी है। शर्मिष्ठा ईरान के राजा वृषपर्वा की पुत्री थी और देवयानी उनके गुरु शुक्र की पुत्री थी (दोनों ययाति की

पत्नियां थी)... ययाति के यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, पुरु और अनु– ये पांच पुत्र थे। यदु के वंशज यादव, तुर्वसु के वंशज यवन, द्रुह्यु के वंशज भोजलोग, पुरु के वंशज पौरव (जिनका पश्चात् भरत नाम पड़ा) और अनु के वंशज म्लेच्छ लोग थे। ... इनमें यादव, भोज और पौरव– ये तीन जातियां भारत में प्रविष्ठ हुईं। चौथी यवन जाति पश्चिम की ओर चली गयी। ... यह संभव है कदाचित अनु के वंशज यवन कहलाये हों और तुर्वसु के वंशज म्लेच्छ कहे गये हों।... पुरु के वंशजों में पहला प्रसिद्ध राजा दुष्यन्त था। उसके शकुन्तला पुत्र 'भरत' हुआ। जिसके नाम पर उसके वंशज भी भरत कहलाये और इस देश का नाम भारत हुआ। भरत के वंशजों में हस्ती नाम के राजा ने गंगानदी के पश्चिमी किनारे पर हस्तिनापुर बसाया। हस्ति के प्रपौत्र कुरु ने गंगा और यमुना के दोआबे के ऊपरी भाग में आधुनिक दिल्ली के उत्तर और युमना नदी के पश्चिम के उपजाऊ मैदान को कुरुक्षेत्र नाम प्रदान किया। इसी के वंश में राजा शंतनु और उसके कौरव-पांडव हुए (–पं. श्रीगंगाशंकरजी मिश्र, महाभारत नामानुक्रमणिका, महाभारत और पाश्चात् विद्वान पृ.64-67) जिनकी गाथा को लेकर महाभारत की रचना हुई। वस्तुतः यह ग्रंथ भागवतों का अथवा भागवत धर्म से संबंधित है। सन् 1899 में प्रकाशित 'संस्कृति साहित्य के इतिहास' (पृ.86) में मैकडोनेल ने जर्मन विद्वान् डालमान के मतका ही समर्थन किया। वे लिखते हैं कि 'यह प्राचीन भागवतों का धर्मग्रन्थ है, जैसा कि इसके दूसरे नाम 'कार्ष्ण वेद' से प्रकट है'।

महाभारत के खिल भाग हरिवंश पुराण (विष्णु पर्व, अध्याय-38) के अनुसार यदु ने पांच नाग कन्याओं से विवाह किया। जिनके गर्भ से मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस तथा राजा हरित उत्पन्न हुए। ... माधव का पराक्रमी पुत्र सत्वत नाम से विख्यात हुआ। इसका पुत्र राजा भीम हुआ, सत्वत से उत्पन्न होने के कारण से उसे और उसके वंशजों को सात्वत कहा गया। जब राजा भीम आनर्त देश के राज्य पर प्रतिष्ठित थे, उन्हीं दिनों अयोध्या में श्रीराम शासन करते थे। इनके राजकाल में शत्रुघ्न ने मधुपुत्र लवण को मारकर मधुवन का उच्छेद

कर डाला। मधुवन के स्थान में शत्रुघ्न ने मथुरापुरी को बसाया। श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के परमधाम सिधारने के पश्चात राजा भीम ने मथुरा को प्राप्त कर लिया। इसके बाद भीम के पुत्र अंधक और फिर उसके वंशजों ने यहां राज्य किया। इस वंश का अंतिम राजा उग्रसेन हुआ जिसका पुत्र कंस जबरन मथुरा का राजा बना जिसका वध वृष्णिवंशी कृष्ण ने किया और द्वारका बसा कर उग्रसेन को ही फिर राजा बनाया तथापि द्वारकाधीश के रूप में कृष्ण ही प्रसिद्ध हुए। फिर कुरुक्षेत्र में हुए युगांतरकारी महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण की निर्णायक भूमिका सर्वविदित है।

कृष्ण और बलराम का द्वारका (गुजरात) से हस्तिनापुर (मेरठ) व कुरुक्षेत्र (हरियाणा) आवागमन राजस्थान में से सरस्वती नदी के किनारे होकर था। महाभारत (आश्वमेधिकपर्व अध्याय- 53-55) में मरुभूमि (राजस्थान) विषयक एक प्रसंग उल्लेखनीय है। काफी समय हस्तिनापुर में रहकर श्रीकृष्ण ने अपनी बहिन सुभद्रा को रथ में बैठाकर द्वारका के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार मरुभूमि के समतल प्रदेश में पहुंचकर महाबाहु श्रीकृष्ण ने अमितजेस्वी मुनिश्रेष्ठ उत्तंक का दर्शन किया। ये भृगुवंशी उत्तंक मुनि ऋषिवर गौतम के शिष्य थे। श्रीकृष्ण ने इनसे आध्यात्मिक चर्चा करते हुए अपनी महिमा का वर्णन किया तथा मुनि उतंक को अपना विश्वरूप दर्शन कराकर वर मांगने को कहा (महाभारत में कृष्ण द्वारा विश्वरूपदर्शन का संभवतः यह तीसरा प्रसंग है, ये प्रसंग श्रीकृष्ण को भगवत या भगवान रूप में प्रतिष्ठित करते हैं)। इस पर मुनि उत्तंक ने कहा-- प्रभो! यदि वर मांगना आप मेरे लिए आवश्यक कर्तव्य मानते हैं तो मैं यही चाहता हूं कि मुझे यहां यथेष्ठ जल प्राप्त हो, क्योंकि इस मरुभूमि में जल बड़ा ही दुर्लभ है। तब भगवान ने अपने उस तेजोमय स्वरूप को समेटकर उत्तंक मुनि से कहा– मुने जब आपको जल की इच्छा हो, तब आप मेरा स्मरण कीजियेगा। जिन दिनों आपको जल पीने की इच्छा होगी, उन्हीं दिनों मरुप्रदेश में जल से भरे हुए मेघ प्रकट होंगे। भृगुनन्दन! वे आपको सरस जल प्रदान करेंगे

और इस पृथ्वी पर उत्तंक मेघ के नाम से विख्यात होंगे। श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर विप्रवर उत्तंक मुनि बड़े प्रसन्न हुए। ऐसा कहकर वे द्वारका चले गये। इस समय भी मरुभूमि में उत्तंक मेघ प्रकट होकर जल की वर्षा करते हैं। महाभारत का यह प्रसंग राजस्थान के जैसलमेर क्षेत्र से संबंधित विदित होता है जिसमें मरुभूमि के प्रसिद्ध फल मतीरे का भी जिक्र है।

अंत में मैं यहां राजस्थान में भागवत धर्म विषयक कुछ प्राचीन साहित्यिक संदर्भ प्रस्तुत करना चाहूंगा। ई. सन् 8वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध जैन लेखक हरिभद्र सूरि ने प्राचीन राजस्थान के प्रमुख साहित्यिक केंद्रों-चित्तौड़ एवं भिल्लमाल (भीनमाल) में रहकर कई ग्रंथों की रचना की। इनमें से समराइच्छकहा ग्रंथ में विष्णु की परमेश्वर और नारायण कह कर महत्ता दर्शायी गई है। धूर्ताख्यान ग्रंथ में वैष्णवों में प्रचलित कथाओं का उपहास किया गया है। तथापि धूर्ताख्यान से यह महत्वपूर्ण सूचना हमें प्राप्त होती है कि इस समय केशव (कृष्ण) को विष्णु का अवतार मानने की परम्परा लोकप्रिय हो चुकी थी। इसके अलावा इस ग्रंथ में उपहासपूर्वक इन प्रसंगों का उल्लेख है– जटायु का विशालकाय शरीर, हनुमान का समुद्र लांघना, हनुमान द्वारा लंका-दहन, वानरों द्वारा सेतु निर्माण, कुंभकर्ण का भोजन, केशव का यशोदा को विराट रूप दिखलाना, कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण एवं कुन्ती के सूर्य द्वारा पुत्र उत्पन्न होना। स्पष्ट ही ये प्रसंग उस समय प्रचलित एवं लोकप्रिय थे। राजशेखर प्रतिहार नरेश महेंद्रपाल (ई.सन् 890-910) और उसके पुत्र महीपाल (ई.सन् 910-948) के राजकवि थे। उनके काव्यमीमांसा ग्रंथ में विष्णु के विभिन्न अवतारों के रूप में वराह श्रीकृष्ण, श्रीराम, नृसिंह एवं वामन का उल्लेख हुआ है। काव्यमीमांसा में भागवतों के चतुर्व्यूह का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यहां कहा गया है कि आदि अंत से रहित, महान (विराट) होते हुए भी सूक्ष्म और समस्त जगत का शासन करने वाले अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण और वासुदेव हमारे सभी प्रकार के ज्वरों को दूर करें। पृथ्वीराज रासो के 'द्वितीय समय' में विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध

एवं कल्कि का उल्लेख है। (डॉ. सतीश त्रिगुणायत-वैचारिकी भाग-12 अंक-2, अक्टूबर-दिसम्बर 1996)।

मेरे विचार में यहां प्रस्तुत भागवत धर्म एवं श्रीकृष्ण विषयक कतिपय प्रसंगों तथा राजस्थान से संबंधित कृष्ण विषयक उल्लेखों से प्रस्तुत ग्रंथ में दिए गये विवरण पाठकों के लिए अधिक ग्राह्य एवं स्पष्ट होंगे। संस्था के पूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय माधोदासजी मूंधड़ा की इच्छा एवं पंडित अक्षयचन्दजी शर्मा की अभिप्रेरणा से राजस्थान में भागवत धर्म विषयक शोध कार्य हुआ और बहुत पहले इसे प्रकाशित होना था, परन्तु इसकी पांडुलिपि खो गई। इससे मैं हताश भी हो गया, परन्तु संस्थाध्यक्ष डॉ. बिट्ठलदासजी मूंधड़ा के बार-बार आग्रह पर इसे पुनः तैयार किया जो अब पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है। इसे तैयार करने में जिन विद्वानों-विदुषियों को मैंने ग्रंथ में संदर्भित किया है उनके प्रति सादर आभार तथा श्री राममोहन लखोटिया, श्री सुरेंद्र भंडारी, श्री संजय कुमार सिंह, डॉ. नीलिमा वशिष्ठ, श्री जितेन्द्रनाथ जौहरी, डॉ. श्रीकृष्ण जुगनु ने जो सहयोग किया है इसके लिए इनके प्रति हार्दिक शुभकामनाएं।

(डॉ. बाबूलाल शर्मा)